Impact Factor 5.307 (SJIF)
RESEARCH HUB
International Peer-Reviewed Multidisciplinary E-Journal
ISSN 2582-9173

प्रतिरोधात्मक शक्ति के उद्घाटक : डॉ. मैनेजर पाण्डेय

(भारतीय समाज में प्रतिरोध की दार्षनिक समीक्षा)

-
डॉ. सुबोध कुमार,
सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र वभाग,
गोपेश्वर महा वद्यालय, हथुआ
जयप्रकाश वश्व वद्यालय, छपरा, (बिहार)
मोबाइल- 9973648842

डॉ. मैनेजर पांडेय वर्तमान भारतीय हिंदी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। वे पछले कई दशकों से गंभीर, सूक्ष्म और वचारोत्तेजक आलोचनात्मक लेखन से पूरे देश में जाने जाते हैं। प्रखर बुद्धिजीवी और चंतनशील साहित्य शोधार्थी होने के कारण उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति के अतीत और वर्तमान में मौजूद द्वंद्वों तथा इन द्वंद्वों के मध्य की उभरती हुई प्रतिरोध की प्र क्रया को पहचाना है। प्रतिरोध एक शाश्वत प्र क्रया है, जो हर देश और काल में वद्यमान रहा है। यह प्रकृति, समाज और वचार आदि हर जगह व्याप्त है। प्राचीन काल से ही भारतीय सामाजिक चंतन के केंद्र के जो मुख्य वषय हैं, वह वर्णाश्रमधर्म-जातिगत व्यवस्था, महिला-पुरुष वभेद, अस्पृश्यता, अमीरी-गरीबी, मजदूर- कसान, गांव-शहर आदि के रूप में व्याप्त रही है। यूं तो भारतीय समाज में यह व्यवस्था (वभेद) सदियों से व्याप्त रहा है, कंतु 21वीं सदी के सूचना क्रांति के इस युग में भी उपरोक्त वभेद का अवशेष आज भी भारतीय समाज में दृष्टिगोचर होती है। यूं तो डॉ. पांडेय के व्यापक अध्ययनशीलता, चंतनशीलता, बुद्धिवादी वचार तथा मुखर प्रतिरोधात्मक व समीक्षात्मक दृष्टि के वषय में कुछ कहना या लखना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है, फर भी वचारों का कोई अंत नहीं होता, इस लए उनके वचारों पर भी समीक्षात्मक दृष्टि डाली जा सकती है।

भारतीय सामाजिक चंतन पर सूक्ष्म दृष्टि डाली जाए तो मानवतावादी, प्रगतिशील-वैज्ञानिक दृष्टि के वचारकों ने सदैव यथास्थितिवादी, अवैज्ञानिक, वभेदात्मक तथा अंध वश्वासी मान्यताओं व परंपराओं का प्रतिरोध कया है। जो प्राचीन काल में चार्वाक, गौतम बुद्ध आदि मध्यकाल में कबीर, रैदास, नानक आदि तथा आधुनिक काल में राजा राममोहन राय, स्वामी ववेकानंद, ज्योतिबा फूले तथा महात्मा गांधी से होते हुए बाबा साहब डॉ. अंबेडकर तथा अन्य हजारों लेखकों, क वयों, वचारकों तथा साहित्यकारों में अनवरत रूप से जारी रहा है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है और दर्पण सत्य व निष्पक्ष प्रतिबिंब दे, यह आवश्यक है, इस लए समयानुसार चंतन में प्रगतिशीलता आवश्यक है और प्रगतिशीलता के लए प्रतिरोध अनिवार्य है। इन्हीं प्रतिरोधात्मक वचारों की अगली कड़ी आदरणीय मैनेजर पांडेय हैं, जिन्होंने बीसवीं सदी के मध्य से 21वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक प्रतिरोध का स्वर मुखरित करते हुए प्रगतिशील साहित्य सृजन को अनुप्रा णत कए हैं।

उनके वचार हैं, "भारत में प्राचीन काल से ही प्रभुत्वशाली परंपरा वरोधी परंपराओं के साथ सुनियोजित रूप से चार तरह के व्यवहार करती रही है। वह सबसे पहले परंपरा की उपेक्षा करती है। अगर उपेक्षा से समाप्त नहीं होती तो फर प्रभुत्वशाली परंपरा उसका उग्र वरोध करती है। अगर वह वरोध से भी नहीं मरती तो फर उसे वकृत करने का प्रयत्न करती है। अगर वरोधी परंपरा वकृत करने के अ भयान से बच जाती है, तब प्रभुत्वशाली परंपरा उसकी क्रांतिकारी धार को कुंद कर (भोथरा बनाकर) अपने में समाहित कर लेती है।"[1] इस तरह उपेक्षा, वरोध, वकृतिकरण और समाहरण की यह चतुर्मुखी प्र क्रया सदियों से आज तक चल रही है।

पारंपरिक ऐतिहा सक प्रतिरोध :

प्रत्येक देशकाल एवं समाज में एका धक परंपरायें होती है। उन परंपराओं को सामान्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है- एक रूढ़िगामी और दूसरी परिवर्तनवादी। संपूर्णता से देखने पर भारतीय इतिहास में दोनों तरह की परंपराएं दिखती हैं। परंपरागत वचार में निष्ठा रखने वाले अतीत के प्रति मोहा वष्ट होकर उन्हें ढोने का अंधाग्रह रखते हैं। वहीं कुछ तथाक थत प्रगतिशील समूह सभी परंपराओं (मृत्यु एवं जी वत दोनों) को वखं डत करने का दुराग्रह रखते हैं और अतीत के प्रति कुटिल नजर आते हैं। ले कन प्रतिगामी बुद् धजीवी दोनों अतिवादों से मुक्त होकर भारतीय समाज को जानने समझने की सम्यक दृष्टि से लैस यथास्थितिवादी ताकतों से असहमति का साहस रखते हैं और प्रगतिगामी परंपराओं से ववेक पूर्ण सहमति भी जताते हैं। प्राचीन वैदिक परंपराओं में भी कई तरह की धाराएं मौजूद रही हैं और उनमें से कुछ निश्चित रूप से सामाजिक न्याय के उपवन का सींचन करती नजर आती है। फर वैदिक परंपराओं में आई जड़ता के खलाफ संघर्षरत लोकायतों या चार्वाकों को और श्रमणो (जैन और बौद्ध) आदि की प्रबल धारा भारतीय इतिहास एवं संस्कृति में दृष्टिगोचर होती है वदित हो क लोकायत हो या चार्वाकों ने सामाजिक अन्याय को दूर करने का एक वैचारिक आधार प्रस्तुत कया और प्रतिरोध की संस्कृति की आधार शला रखी।[2] इस वचारधारा के अनुसार ब्राह्मणवादी व्यवस्था यथा- वर्णाश्रम धर्म, आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म तथा कर्म फल आदि के अस्तित्व को अस्वीकार करना मनुष्य को अलौ कक प्रतिष्ठा देने का ही काम था।[3]

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में श्रमण संस्कृति के दो प्रमुख नायक महावीर और गौतम बुद्ध ने ब्राह्मण संस्कृति में व्याप्त हिंसा एवं अन्याय को खुली चुनौती दी। गौतम बुद्ध ने भारत में सामाजिक अन्याय के लए जिम्मेदार रहीं वर्ण-जाति व्यवस्था पर कठोर प्रहार कया। उन्होंने इसके तीनों आधारों यथा ईश्वरीय धारणा, मूलोत्प त और जन्मगत उच्चता का ता र्कक व बौद्धिक खंडन कया। बुद्ध ने स्पष्ट कहा क जन्म से कोई ब्राह्मण (श्रेष्ठ) नहीं होता और ना अब्राह्मण होता है। कसान कर्म से होता है, कारीगर कर्म से होता है, चोर कर्म से होता है, सपाही कर्म से होता है, याजक कर्म से होता है, और राजा भी कर्म से ही होता है। कर्म से सारा जगत चलता है। जिस प्रकार धुरी पर आधार रखकर रथ चलता है, उसी प्रकार सारे प्राणी अपने-अपने कर्म पर आधार रखते हैं।[4] आगे वे कहते हैं, "धर्म (धम्म) नदी पार करने के लए नाव की तरह है। यदि कोई नदी पार कर नाव को सर पर उठा कर चलने का वचार करें तो वह मूर्ख है, इसी तरह यदि कोई धर्म को मन की शुद्धि और शील का साधन बनाने के बजाय अंध वश्वास के साथ चपका रहे तो वह अयोग्य है।"[5]

इधर उत्तर भारत में बौद्धों की वरासत को सद्ध और नाथों ने लोक भाषा के माध्यम से आगे बढ़ाने का काम कया। उन्होंने हिंदुओं के बाह्य आडंबर और जैनियों के आत्म पीड़न की कड़ी आलोचना की। उन्होंने कहा, "हिंदू दीप जलाते हैं, घंटा बजाते हैं, बाल दाढ़ी बढ़ाते हैं, आसन बांधते हैं, इसी तरह जैन म लन वेश धारण करते हैं, अति कष्ट देकर मोक्ष चाहते हैं, केश लुंचन करते हैं। इस प्रकार यदि नग्न रहने से मुक्ति मले, तो स्त्रियारों को मल सकती थी और यदि मयूरपंख धारण करने से मुक्ति मलती तो मोर को मल जाती।"[6]

नाथों की यही परंपरा मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में पुरजोर तरीके से सामने आई। इस दौरान संत कबीर, रैदास, दादू, नामदेव, नानक, चोखा मल, भक्त सहजोबाई तथा मीराबाई आदि ने ऊंच-नीच, जाति-भेद तथा बाह्य आडंबर पर जमकर वरोध कया। कबीर ने बुद्ध की तरह धा र्मक कर्मकांडों एवं सामाजिक रूढ़ियों पर करारा प्रहार कया। वे वेद-पुराण व कुरान आदि धर्म ग्रंथों को प वत्र और अकाट्य नहीं मानते थे। उन्हें मंदिर, मस्जिद, मूर्ति-पूजा तथा दरगाह पर चादर चढ़ाने जैसी परंपराओं में वश्वास नहीं था। उन्हें पत्थर के बने भगवान से पत्थर की चक्की ज्यादा पूजनीय लगता था। उन्होंने माना क मन की प वत्रता और शुद्धता ना हो तो जप-तप, संयम तीर्थ, व्रत और

पूजा पाठ आदि बाह्य आडंबर एवं ढकोसला है। वे मानते थे क मानव शरीर में ही ईश्वर वराजमान है, उसे मंदिर मस्जिद में ढूंढने की आवश्यकता नहीं है। चाहे ब्राह्मण हो या शुद्र–अतिशुद्र सभी एक ही परमात्मा की ज्योति से उत्पन्न हुए हैं इस लए सभी समान है। कुछ लोग अनावश्यक रूप से अपने को श्रेष्ठ और दूसरे को हीन समझते हैं, जबकि सत्य यह है कि सभी मां के गर्भ से ही पैदा होते हैं।"[7] फर यदि ब्राह्मण जनेऊ पहन कर श्रेष्ठ बने हैं तो अपनी ब्राह्मणियों को जनेऊ नहीं पहनाया है, इस लए ब्राह्मणी तो जन्म से शुद्र ही रही, तो फिर ब्राह्मण उनके हाथ का भोजन क्यों खाते हैं।[8] प्रतिकूल परिस्थितियों में नए रास्ते की तलाश नए राह का निर्माण कोई आसान काम नहीं था। अपना घर जला कर दूसरों (समाज) का घर बचाना तथा जनसामान्य के बीच पुकार लगाना कोई असाधारण व रोशन व्यक्तित्व ही कर सकता था। कबीर के शब्दों में :

"कबीरा खड़ा बाजार में लए लुकाटी हाथ।
जो घर जारै आपना चले हमारे साथ।।"[9]

ऐसा प्रतीत होता है क कबीर के समय में भी बाजार था, जिसने अपनी क्रांतिकारी भू मका अदा की होगी। सामंती व्यवस्था ने धा र्मक कर्मकांड और तद्जनित पाखंड ने मनुष्य की सत्ता को छोटा करने की चेष्टा की, वही बाजार ने कसानों–मजदूरों को सापे क्षक स्वायत्तता प्रदान कर मनुष्य को उसकी स्वाभा वक ऊंचाई प्रदान की थी। हिंदू व मुसलमान दोनों के अपने-अपने अबौद्धिक पाखंड व अंध वश्वास, खाने और दिखाने के अलग-अलग दांत, ऐसे कठिन पाटों के बीच भारत के बहुसंख्यक द लत-शो षत-मजदूर और कसान पिसने के लए अ भशप्त रही होगी। यह देखकर कबीर रो उठते हैं-

सु खया सब संसार है खाए और सोए।
दु खया दास कबीर है जागे और रोए।।[10]

दुनिया खा रही है और सो रही है तथा निरंतर चक्की में पीसती जा रहे हैं। जो पीसे जा रहे हैं, उन्हें महसूस ही नहीं हो रहा है। कबीर जगे हैं, देख और समझ रहे हैं। वे दुखी हैं और रो रहे हैं क दुनिया उनके अनुभूत सत्य को सुनना-समझना नहीं चाहती।

दरअसल उस समय के समाज में मनुष्य की पहचान का आधार धर्म-वर्ण-वर्ग और जाति भेद था। कबीर इस संकीर्णता से ऊपर उठकर केवल श्रम, ज्ञान और कर्म को अपनी पहचान समाज के सामने रखा, वह भी एकांत वन में जाकर नहीं बल्कि गृहस्थ जीवन का निर्वाह तथा पारिवारिक भरण पोषण हेतु निर्धारित व्यवसाय करते हुए।

आधुनिक वचारकों में राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र वद्यासागर, ज्योतिबा फुले, सा वत्रीबाई फुले, शाहूजी महाराज तथा डॉ आंबेडकर आदि ने भारतीय समाज-परिवर्तन हेतु यथास्थिति परंपरा वादी वचार के खलाफ जोरदार प्रतिरोध कया। यूं तो भारतीय समाज में वर्ण-धर्म-जाति तथा अस्पृश्यता आदि सामाजिक बुराई उत्तर वैदिक काल से आधुनिक युग तक जारी थी, कंतु सबसे भयावह स्थिति महिला-पुरुष वभेद अर्थात लंग भेद का था। इस काल तक महिलाओं के अस्तित्व पर ही संकट था। भारतीय समाज में सती-प्रथा, वधवा-प्रताड़ना, बाल ववाह जैसे कुकृत्य ना केवल धड़ल्ले से जारी था बल्कि यह धर्म सम्मत व्यवस्था भी ठहरा दी गई थी। उत्तर वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक के वचारकों ने महिला अस्तित्व को लेकर न केवल परिस्थितियों से समझौता कया बल्कि अ धकांश वचारकों ने इसे अपने भाग्य पर आंसू बहाने हेतु छोड़ दिया।

राजा राममोहन राय को पुनर्जागरण का अग्रदूत कहा जाता है, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य से सती-प्रथा, बाल- ववाह तथा वधवा पुन र्ववाह हेतु कानून बनवाया तथा पाश्चात्य शक्षा (वेस्टर्न एजुकेशन) की मांग कया। ज्योतिबा फूले जिन्होंने डॉक्टर अंबेडकर के चंतन का पृष्ठभू म तैयार कए थे, वह जान चुके थे क भारत के बहुसंख्यक आबादी यथा मजदूर- कसान, शुद्र-अतिशुद्र तथा महिलाओं की सारी दुर्दशा का जड़ अविद्या (इग्नोरेंस) है।

उन्होंने कहा " वद्या बिना मति गई। मति बिना नीति गई। नीति बिना गति गई। गति बिना वत्त गया। वित्त बिना शूद्र टूटे, इतने अनर्थ अविद्या ने कए।"[11]

उन्होंने न केवल अविद्यारूपी बीमारी का इलाज ढूंढ लए, बल्कि प्रतिकूल सामाजिक-आ र्थक परिस्थितियों में 1848 ई. में भारतीय महिलाओं के लए प्रथम पाठशाला खोले। श क्षका के अभाव में अपनी पत्नी को श क्षत कर उन्हें अपने वद्यालय में श क्षका नियुक्त कए। ज्योतिबा फुले का सामाजिक-परिवर्तन का यह सकारात्मक प्रयास ऐतिहा सक तो था ही, समाजिक प्रतिरोध ही था। आगे चलकर उन्होंने कई स्कूल, वधवा-आश्रम तथा अनाथालय आदि भी खोलें।

19वीं सदी के उत्तरार्ध 1890 ई. में उनकी मृत्यु होती है और उसी काल (14 अप्रैल 1891) में डॉक्टर अंबेडकर का जन्म होता है। डॉक्टर अंबेडकर का संपूर्ण जीवन-संघर्ष सम र्पत हो गया भारत के बहुसंख्यक आबादी के गुलामी की बे ड़यां को काटने के लए। उन्होंने इन सामाजिक बुराइयों के खलाफ न केवल राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय मंच पर अपनी बातों को रखा बल्कि भारतीय सं वधान के निर्माण में सदियों से उपे क्षत बहुसंख्यक समाज वशेषकर द लतों और महिलाओं के कल्याण, वकास और सुरक्षा के लए कई संवैधानिक प्रावधान भी कये। इस प्रकार बीसवीं सदी के मध्य में कमजोर वर्गों को कई लोकतांत्रिक अ धकार यथा समता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व, सामाजिक-आ र्थक-राजनीतिक न्याय तथा मानवा धकार प्राप्त हुए। यह भी भारतीय समाज में एक ऐतिहा सक प्रतिरोध ही था।

वदित हो क 19वीं सदी में जहां महिलाओं के अस्तित्व रक्षा हेतु सकारात्मक प्रयास कए गए, वही बीसवीं सदी में महिलाओं को मानवीय, लोकतांत्रिक व नैतिक मूल्य की प्राप्ति हुई। यद्य प भारतीय सं वधान लागू होने से भारतीय समाज में गुणात्मक और परिमाणात्मक परिवर्तन हुए कंतु भारतीय समाज आज भी पतृसत्तात्मक है। पुरुषवादी अहं झुकने को तैयार नहीं होते, इस लए आज भी महिलाओं को दोयम दर्जे प्राप्त हैं।

21वीं सदी और पूंजीवाद :

21वीं सदी पूंजीवाद का समय है। पूंजीवाद के गर्भ से ही एल.पी.जी. अर्थात भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण का जन्म हुआ। परिणामतः आज का भारतीय समाज पूरी तरह दो हिस्सों में बँट गया। एक है अमीरों का भारत दूसरा अधीनों का भारत।[12]

भारत के संदर्भ में ग्रामशी के शब्दों में "जिन्हें अधीन वर्ग कहा जाएगा, उन्हें डॉक्टर अंबेडकर 'बहिष्कृत भारत' कहते थे। इसी को कुछ लोग मुख्यधारा बनाम हा शया तो कुछ दूसरे उसे केंद्र और परि ध के संबंध के रूप में देखते हैं। जबसे भारत भूमंडलीकृत हुआ है तब से भारतीय समाज की अ धकांश जनता के जीवन में क्या परिवर्तन हुए हैं और भारतीय समाज के यथार्थ के असली रूप क्या है? भारत में गरीबी घटने की गति धीमी हुई है। 2005 में गरीबी 37% तथा 2010 में 32% घटी है। इसी बीच देश में करोड़पतियों की संख्या तेजी से बढ़ी है। योजना आयोग के एक सदस्य अ भजीत सेन का कथन है "मैं निश्चित रूप से मानता हूं कि विषमता बढ़ रही है और अश्लील रूप से धन जमा करने के खलाफ कुछ नहीं कया जा रहा है।" मुट्ठी भर पूंजीपति धन के सागर में तैर रहे हैं और देश का बहुसंख्यक आबादी अभाव और गरीबी के रे गस्तान में भटक रहे हैं। शक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र कभी समाज कल्याण के क्षेत्र माने जाते थे आज व्यक्तिगत व्यापार क्षेत्र बन गए हैं।[13] अ मत भादुरी ने लखा है क "आजकल यह कथन प्रच लत है क भारत में दो भारत हैं एक चमकता भारत दूसरा डूबता भारत। पहले में उद्योगपति, व्यापारी, राजनेता और प्रशासनिक अ धकारी हैं। उनके वशाल बंगले-महँगी कारें हैं, खाने-पीने की अपार सु वधाएं हैं तो दूसरे भारत में गरीबी है, भुखमरी, बीमारी, बेरोजगारी, अभाव, आत्महत्या, वस्थापन व तबाही है। पहले भारत के निवासी संतु लत आहार के लए, दूसरे भूख मटाने के लए चंतित हैं। यह भूमंडलीकृत भारत का भयावह यथार्थ।"[14]

21वीं सदी और बाजारवाद :

वर्तमान समय पूरी तरह बाजारवाद के गरफ्त में है। बाजार हमारे द्वार पर दस्तक देने लगी है। सूचना क्रांति के इस युग में शॉ पंग मॉल और ऑनलाइन खरीददारी इसके उदाहरण है। बाजार की शक्तियाँ मनुष्य और मनुष्यता को छोटा करने के लए आतुर है। वज्ञापनवाद, उपभोक्तावाद और नग्नउपभोक्तावाद का दर्शन मुक्त बाजार व्यवस्था के रूप में प्रकट हुआ है। पूंजीपति वर्ग ने उसे ऐसे परोसा है जैसे दुख से मुक्ति का यही उपाय है। कंतु सत्य यह है क एक दुनिया है जो चकाचौंध फैला रही है, दूसरी दुनिया है जो इस चकाचौंध की ओर भाग रही है और एक ऐसी भी दुनिया है जो इस चकाचौंध में जल रही है। मुक्त बाजार व्यवस्था माया की भांति है जो सुख और आनंद की आभास तो देती है, कंतु जो इस भ्रम की ओर गए तो पाया क यहां दाह है, वनाश है, कसान-मजदूरों की चीखें हैं, आत्महत्या व क्रंदन है।[15] कुल मलाकर यह कहा जा सकता है क नवीन अर्थव्यवस्था पूर्णरूपेण पश्चिमी पूंजीवाद के साथ-साथ बाजार एका धकारता पर आधारित है। इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था का यह आधुनिक मॉडल गांव के कसान खेतिहर, मजदूर तथा वं चत भू महीन वर्गों को जो अ धसंख्य में द लत, पछड़े, निरक्षर, मजदूर और कसान हैं को नवीन अर्थव्यवस्था में कोई स्थान नहीं है।

21वीं सदी और पर्यावरण:

पूंजीवाद के इस दौड़ में दुनियाँ के कई संकटों में एक पर्यावरण या प्राकृतिक संकट भी है, जिससे पूरा विष विनाष की ओर जा रहा है। भूमंडलीकरण के साथ भूमंडल में जो गर्मी (ग्लोबल वा मंग) बढ़ रही है, उसका उत्तरदायित्व स्वीकार तथा समाधान निकालने को देश तैयार नहीं है। जिन्होंने पूंजीवाद के वस्तार के क्रम में प्रकृति का वनाश कया है। अमेरिका अपने राष्ट्रीय हितों की चंता करता है, बाकी दुनिया की प्रकृति और पर्यावरण के वनाश का नहीं। भूमंडलीकृत भारत का सबसे अ धक समूह है बच्चों का। भारत के नगरों और महानगरों में बच्चे भीख मांगते कूड़ा-चूनते, छोटे-छोटे होटलों-ढाबों और लोगों के घरों में नौकरी करते, दरी और कालीन बनाते और तरह-तरह की गुलामी करते दिखते हैं, जो समाज और देश बच्चों की चंता और देखभाल ठीक से नहीं करता, उसे बर्बर समाज कहा जाना चाहिए।

पूंजीवाद का ही प्रभाव है क आज पढ़े- लखे द लत सरकारी-अ धकारी अपने रहन-सहन रंग-ढंग वेशभूषा पूजा पाठ तिलक छापों में कसी अ भजात वर्ग की भांति कर्मकांडी होते जा रहे हैं, उन्हें यह याद नहीं क उनके पूर्वजों ने काफी संघर्ष, त्याग और मेहनत से कारवां को आगे बढ़ाया था, अतः उन्हें समाज के ऋण चुकाने हेतु 'पे बैक टू सोसाइटी' हेतु धन-ज्ञान तथा समय (मनी माइंड एंड टाइम) समाज को देना ही चाहिए, कंतु सत्य है क जितना बड़ा और ऊंचा अ धकारी उतना ही उसके अंदर जाति छुपाना तथा द लत-श्र मक से पीछा छुड़ाने की ललक है।[16] इस प्रकार आज द लत पछड़े उच्च मध्यम वर्ग में भी नवसामंतवाद एवं नवब्राहमणवाद का प्रचार-प्रसार तेजी से हो रहा है।

21वीं सदी और महिला सशक्तिकरण:

पूंजीवादी व्यवस्था का प्रभाव देश की आधी आबादी महिलाओं पर भी पड़ा है। आज महिला सशक्तिकरण का युग है, महिला सशक्तिकरण कसी भी प्रगतिशील समाज व राष्ट्र के लए गौरव की बात होनी चाहिए। महिला सशक्तिकरण का अर्थ है महिलाओं को प्रगतिशील, बौद् धकता, स्वावलंबन, आत्म-स्वा भमान व आत्म-सम्मान है जो समाज व राष्ट्र को सफलता प्रदान करेगी। जिससे सकारात्मक वकास ही होगा। किंतु भारत गांवों का देश है,

इस लए सशक्तिकरण की आड़ में केवल मुट्ठी भर महिलाओं नहीं बल्कि गांव, कस्बों, द लतों-महाद लतों तथा आदिवासी महिलाएं भी सशक्त हों तब महिला सशक्तिकरण समयानुरूप और सफलीभूत होगा। चूँकी महिला समाज और परिवार की धूरी है वह हमारे साथ मां-बहन-बेटी और बहू बनकर रहती है, इस लए समाज और संस्कृति की उन्नयन हेतु उनकी सकारात्मक सशक्तिकरण हेतु तथाकथित परंपराओं से प्रतिरोध आवश्यक है।

21वीं सदी और लोकतंत्र :

वर्तमान समय पूंजीवादी लोकतंत्र का है। पूंजीवादी लोकतंत्र में समानता की न तो कल्पना होती है और ना संभावना। उसमें केवल पूंजीपतियों की स्वतंत्रता प्राप्त होती है। सही लोकतंत्र पूरे समाज में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व की भावनाएं वास्त वक रूप में दिखना चाहिए, केवल मंत्र के रूप में नहीं बल्कि शासन तंत्र के व्यवहार में भी। गांधी जी की कल्पना के स्वराज में समानता की केंद्रीय स्थिति है। उन्होंने लखा है, "पूर्ण स्वराज कहने का आशय यह है क वह जितना कसी राजा के लए होगा उतना ही कसान के लए। जितना कसी धनवान जमींदार के लए होगा, उतना ही भू महीन-खेतिहर-मजदूर के लए। जितना हिंदुओं के लए होगा, उतना मुसलमानों के लए भी। जितना जैन, यहूदी और सख के लए होगा, उतना ही पार सयों और ईसाइयों के लए भी। उसमें जाति-पाती, धर्म अथवा दर्जे के भेदभाव के लए कोई स्थान नहीं होगा।"[17]

क्या वर्तमान लोकतंत्र गांधीजी की दृष्टि से अपूर्ण, अधूरा और असफल नहीं है? कुल मलाकर गांधी जी ऐसे लोकतंत्र का निर्माण चाहते थे जो मनुष्य को सामाजिक और समाज को मानवीय बनाए, कंतु पूंजीवाद असामाजिक मनुष्य पैदा करता है और असामाजिक मनुष्यों का समूह समाज को अमानवीय बनाता है।

भारत ही नहीं बल्कि दुनिया में प्राचीन काल से ही प्रतिरोध की आवाज देश काल परिस्थिति अनुसार बुलंद होते रहे हैं। यदि सामाजिक प्रतिरोध ना हो तो सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक पुनर्निर्माण भला कस प्रकार संभव है? देशकाल एवं प्रकृति के मांग के अनुसार बुद्ध आए, कबीर आए, फूले आए, अंबेडकर व गाँधी आए और सामाजिक पुनर्निर्माण हेतु 'ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया' के भांति चले गए। प्रकृति में फोटोस्टेट (छाया प्रति) नहीं होता, इस लए कोई दूसरा बुद्ध–कबीर-फुले-गांधी और अंबेडकर को पुनः आने का सवाल ही नहीं है, कंतु प्रतिरोध तो षास्वत है, प्रगतिगामी है, इस लए समयानुसार पात्र का नाम बदल जाते हैं, किंतु प्रतिरोध की प्र क्रया आगे बढ़ती ही रहती है। आज भी देश के हजारों प्रगतिशील, मानवतावादी, बुद्धिजीवी, साहित्यकार, लेखक, वचारक, क व और शायर अपनी लेखनी व वचार से प्रतिरोध की आवाज बुलंद करते आए हैं, जिनका उद्देश्य वही है जो भारतीय सं वधान के प्रस्तावना का है।

डॉ. मैनेजर पांडेय पछले कई दषकों से हिंदी साहित्य में मानवीय और बौद्धिक लेखन से साहित्य जगत में अपनी पहचान बनाए हुए हैं। यूं तो उनके अध्ययन व चंतन का केंद्र मुख्य रूप से द लत व स्त्री वमर्श रही, बावजूद इसके उन्होंने भारतीय समाज के सभी पक्ष, सभी वर्ग और सभी मुद्दों पर निष्पक्ष और प्रगतिशील दृष्टि डालते हुए गंभीर व ता र्कक साहित्य लेखन तथा क्रांतिकारी वचार प्रस्तुत कए।

उनकी रचनाओं में "अनभै साँचा" एक प्र सद्ध रचना है। अनुभूत सत्य को निर्भीकता से कहना कोई साधारण बात नहीं है, और ना साधारण काम है। वभेद, अन्याय, अत्याचार, अंध वश्वास, संकीर्णता, अ शक्षा, गरीबी-बेरोजगारी, संप्रदाय वाद, बीमारी, मजदूर- कसान की समस्याओं तथा सबाल्टर्न सोसाइटी के उन्नयन-कल्याण और सुरक्षा हेतु प्रतिरोधात्मक मनन- चंतन और लेखन करना तथा सत्य (समता-स्वतंत्रता) को उद्घाटित करना समाज

के बुद्धिजी वयों का पावन कर्तव्य है। यद्य प यथास्थितिवादी परंपरा मूलक समाज इसके खलाफ होते हैं, फर भी बहुजन हिताय- बहुजन सुखाय के लए सत्य बोलने, लखने और कहने के लए प्रतिरोध करना ही चाहिए। प्रतिरोधात्मक शक्ति के उत्स उन्हीं व्यक्ति समाज और वचार में होते हैं, जो मानवीय व नैतिक मूल्यों से लैस हों, जो निर्भीक सत्यवेत्ता, निष्पक्षता, नि:स्वार्थता के गुणों से युक्त हों।

वर्तमान समय संक्रमण काल का समय है। सत्ताधारी राजनीतिक दलों पूंजीवादी व ब्राह्मणवादी वचारधारा को धरातल पर उतारने के लए संकल्पित हैं। भीषण बेरोजगारी, जीडीपी में कमी, आ र्थक-मंदी तथा लोक कल्याणकारी योजनाओं का ह्रास देश में व्याप्त है। देश में जो मुद्दा नहीं है, वह मुद्दा है और जो ज्वलंत मुद्दे हैं वह गौण होते जा रहे हैं। गाय-गंगा-मंदिर-मस्जिद तथा संप्रदायवाद के नाम पर असहिष्णुता का माहौल दिखता है, ऐसी गंभीर व वकट परिस्थिति में डॉक्टर पांडेय का चंतन और भी प्रासं गक व समीचीन है।

कहना न होगा क डॉक्टर मैनेजर पांडे के साहित्य सृजन- चंतन तथा कल्पना में एक ऐसे आदर्श निर्माण व सामाजिक न्याय की परिकल्पना है जिसकी कल्पना बुद्ध, कबीर, गांधी, मार्क्स, अंबेडकर तथा अन्य मानवतावादी वचारकों ने की थी। उनके साहित्य-दर्शन में एक साथ हजारों मानवतावादी साहित्यकारों व बुद्धिजी वयों के वचार व प्रतिरोध प्रतिबिंबित होते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं क वाद-प्रतिवाद व संवाद बौद्धिक व निष्पक्ष ववेचन का आधार रहा है और डॉक्टर पांडेय ने अपने वचार व साहित्य सृजन में इनका बखूबी प्रयोग कया है, निःसंदेह वे 21वीं सदी में प्रतिरोधक शक्ति के उद्घाटक हैं।

संदर्भ सूची :

- पांडेय, मैनेजर : भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा, वाणी प्रकाशन, पटना, 2013, पृ.सं.-18,
- आर्य, डॉ. रामाशंकर : सामाजिक बहिष्कार एवं प्रतिरोध एक अवधारणात्मक वश्लेषण, (द लत अस्मिता, सं. वमल थोराट, नई दिल्ली, वर्ष -1, अंक- 2, जनवरी - मार्च 2011, पृ.सं.-17)
- ठाकुर, खगेंद्र : आज का वैचारिक संघर्ष और मार्क्सवाद : स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ.सं.-229,
- मज्झिम निकाय, वासेटठ सूत्र, उद्धृत- र वदास, डॉ. वलक्षण, अछूत जातियों और बौद्ध धर्म, नई कताब, दिल्ली, 2009, पृ.सं.-106,
- शर्मा, डॉ. राजकुमार, 'संपादकीय', भारतीय चंतन-सृजन का प्रगतिगामी मानवीय पक्ष, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.सं.-16,
- (उद्धृत मज्झिम निकाय 1.48)
- भारती, कंवल : द लत वमर्श की भू मका, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. सं.-16, एक छिद्र एक मलमूतर एक चाम एक गुदा। एक नूर ते सब कोई उपजै, क्या ब्राम्हण क्या सूदा।।
- संह, रामगोपाल : डॉ. आंबेडकर सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन, नेशनल पब्लि शंग हाउस, जयपुर, 2006, पृ.सं.-185,
- वही, पृ.सं.-185,
- राज कशोर (सं.), कबीर की खोज, नई दिल्ली, 2001, पृ.सं.-185,
- वही, पृ.सं.-179-180,
- शहा, डॉ. मु. ब. : भारतीय समाज क्रांति के जनक महात्मा ज्योतिबा फूले, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1992, (पांडेय, मैनेजर : भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा, वाणी प्रकाशन, पटना, 2013, पृ.सं.-63,